International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
March-April - 2017, Volume-4, Issue-2
P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org
Email- editor@ijesrr.org

मानवाधिकार एवं भारतीय संविधान में मूल अधिकारों से सम्बन्धित अधिकारों एवं कानूनों का संक्षिप्त अध्ययन

Dr. Vijay Kumar,
Assistant Professor,
B.S.M. Law College Roorkee

सार–
मानव अधिकार किसी भी मनुष्य को उसके मानव जाति में जन्म के आधार पर उपलब्ध मूल अधिकार हैं। यह सभी मनुष्यों में अपनी राष्ट्रीयता, धर्म, भाषा, लिंग, रंग या किसी अन्य विचार के बावजूद निहित है। मानव अधिकारों का संरक्षण अधिनियम, 1993 मानवाधिकारों को परिभाषित करता हैः "मानवाधिकार" का अर्थ है, संविधान द्वारा प्रदत्त व्यक्ति की जीवन, स्वतंत्रता, समानता और गरिमा से संबंधित अधिकार या भारत में अदालतों में अंतर्राष्ट्रीय वाचाएं और प्रवर्तनीय। देश के लोगों के विकास के लिए मानव अधिकारों का संरक्षण आवश्यक है, जो अंततः राष्ट्रीय विकास को एक पूरे के रूप में ले जाता है। भारत का संविधान देश के प्रत्येक नागरिक को बुनियादी मानवाधिकारों की गारंटी देता है। संविधान के मर्मज्ञों ने आवश्यक प्रावधानों को पूरा करने में अपना सर्वश्रेष्ठ प्रयास किया है। हालांकि, निरंतर विकास के साथ, मानव अधिकारों के क्षितिज का भी विस्तार हुआ है।

प्रस्तावना–
नागरिक स्वतंत्रता अपने आधुनिक अभिप्राय और गुणों के साथ राज्य का उन्नयन अंग्रेजी शासन के समय से ही न्यूनाधिक रूप से समांतर रहे हैं। परन्तु इन्हें स्पष्ट प्रोत्साहन ब्रिटिश शासन के रूप में तब मिला जब अंग्रेजों ने मनमाने कानूनों जैसे शस्त्रहीन भारतीयों पर पाश्विक आक्रमण, निरंकुशता तथा दमनकारी[1] व्यवहार भारतीयों के साथ किया। इसका प्रत्यक्ष परिणाम कांग्रेस का जन्मस्थान, सरकारी नौकरियों की प्राप्ति में बिना किसी न्यूनता के मानवाधिकारों को सुरक्षित करता था। कांग्रेस के स्थापना के साथ ही आजादी के आन्दोलन में आधारभूत मानवाधिकारों के प्रमाण को देखा जा सकता है। भारत में पहला औपचारिक दस्तावेज 1928 में मोती लाल नेहरू द्वारा तैयार किया गया। इसमें मोतीलाल नेहरू ने निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षा, जीवन निर्वाह योग्य भत्ता, मातृत्त्व सहायता के बारे में जिक्र किया था। इन्होंने मानवाधिकारों के रूप में दूसरे संकल्पों की चर्चा की। इस वैकल्पिक प्रस्ताव में पूरे देश के लिए एक ऐसा कानून बनाने की प्रतिबद्धता थी 'जिसमें सब लोगों को पर्याप्त संरक्षण, अल्पसंख्यक, जनजाति, पिछड़े, वंचित और अन्य वर्गों की गारंटी तथा संरक्षण प्रदान किया जाएगा। यह प्रस्ताव संविधान बनाने वालों के आधारभूत सिद्धातों के सम्मेलन तथा कार्यान्वयन को प्रकट करता है जो अधिकार सार्वभौमिक घोषणापत्र में निरूपित किए गए थे। भारत की संविधान सभा ने इनमें से अधिकारों को भारतीय संविधान में समावेश किया।

भारत का संविधान 26 नवम्बर 1949 को पारित हुआ। संविधान पर सर्वसम्मति से फैसले के उपरांत मानवाधिकार की बात न केवल चर्चा में आ चुकी थी वरन् विश्व में इसका प्रसार काफी तेजी से हो रहा था। भारत के संविधान के निर्माण के समय मानव मूल्यों का काफी प्रसार हो चुका था इसीलिये उदारवादी दृष्टिकोण को

लेकर इसे सुरक्षा देते हुये देश हेतु कानून बनाए गए। यद्यपि भारत 15 अगस्त, 1947 में ही स्वतंत्र हो चुका था, परंतु वह उस समय पूर्ण स्वतंत्र एवं सम्प्रभुता सम्पन्न नहीं कहा जा सकता था, क्योंकि प्रत्येक पूर्ण स्वतंत्र देश का शासन कार्य संविधान से सम्पादित होता है। 26 जनवरी, 1950 को भारत एक पूर्ण स्वतंत्र और प्रभुत्व सम्पन्न गणतंत्रीय राज्य बना। इसी दिन भारत का अपना ''संविधान'' लागू हुआ।[2]

भारत संविधान एक 'सामाजिक दस्तावेज'[3] है और समाज का दर्पण है। भारतीय संविधान की ''प्रस्तावना'' ही संविधान का ''सारांश'' है। यह संविधान के दो तत्त्व को स्पष्ट करती है– शासन व्यवस्था का उद्देश्य एवं उसका स्वरूप। हिदायतुल्लाह के अनुसार प्रस्तावना विधि के आत्मा के संरूप है और इसमें अपने देश की सम्प्रभुता, समाजवादिता, धर्मनिरपेक्षता तथा लोकतंत्रीय शासन की झलक मिलती है तथा साथ ही साथ यह अपने को हर तरीके से सुरक्षा देती है।[4]

संविधान की ''प्रस्तावना'' में उल्लिखित ''हम भारत के लोग'' का तात्पर्य है अंतिम एवं सम्पूर्ण सत्ता भारत में लोगों में निहित है।[5] भारत ने राष्ट्रमंडल (कामनवेल्थ) की सदस्यता को स्वीकार किया, जिससे संविधान सभा के सदस्यों को उसकी सर्वोच्चता के विषय में शंका हुई। किन्तु इस आशंका का निवारण करते हुए 10 मई, 1948 को जवाहरलाल नेहरू ने कहा, ''बहुत पहले हमने पूर्ण स्वराज्य या पूर्ण स्वतंत्रता पाने की शपथ ली थी। अब हमने इसे पा लिया है क्या किसी अन्य देश के साथ संधि करने के बाद कोई राष्ट्र अपनी स्वतंत्रता खो बैठता है? संधि का साधारण अर्थ होता है प्रतिबद्धता, राष्ट्रमंडल के सार्वभौम राष्ट्रों की स्वतंत्र संस्था ऐसे प्रतिबंधों को नहीं मानती, इसकी नमनशीलता तथा इसकी पूर्ण स्वतंत्रता में ही इसकी शक्ति निहित है। यह सबको अच्छी तरह ज्ञात है कि कोई भी सदस्य राष्ट्रमंडल को छोड़ सकता है यदि वह ऐसा चाहे।'' वास्तव में भारतीय सम्प्रभुता भारतीय जनता के अपने श्रम की उपलब्धि है जो कि संविधान में उसके प्रतिनिधियों द्वारा स्थापित की गई है।

इस प्रकार भारतीय संविधान एक जनतांत्रिक रूप से निर्मित सरकार की व्यवस्था ही नहीं, वरन् एक जनतांत्रिक शासन प्रणाली एवं जनतांत्रिक जीवन पद्धति की प्रतिबिम्ब भी है। भारत में वयस्क मताधिकार द्वारा ही चुने हुए प्रतिनिधियों के द्वारा शासन व्यवस्था का संचालन जरूरी है तथा देश के सभी लोग अपने चतुर्दिक उन्नयन हेतु अपने अधिकारों के इस्तेमाल की बौद्धिक क्षमता रखते हैं।

''गणतंत्र'' शब्द के कई अर्थ हैं। कुछ लोग इसे राजतंत्र का विरोधी कहते हैं, तो कुछ मानते हैं कि शासन न्यूनाधिक बहुसंख्यक लोगों के हाथ में निहित हो। रूसो यह मानता था कि– गणराज्य वह है जो सामान्य इच्छा के सर्वोच्च निर्देशन में कार्य करती है, फिर चाहे शासन का स्वरूप राजतंत्रात्मक हो अथवा वर्गतंत्रात्मक। न्यू ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी ने इसका अर्थ यह माना है: ''शासन का वह स्वरूप जिसमें सर्वोच्च सत्ता जनता द्वारा चुने प्रतिनिधियों में निहित हो।''

हमारे संविधान में गणराज्य के दोनों ही अर्थ निहित हैं। प्रथम, यह राज्य के सबसे बड़े कर्मचारी के वंशानुगत स्वरूप को अस्वीकार कर दिया गया और द्वितीय, संविधान का आग्रह है कि राज्य में सभी पद, छोटे से बड़े तक, सभी नागरिकों के लिए समान रूप से खुले होंगे और धर्म, जाति, मत तथा लिंग आदि (अनु. 16) के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होगा।

''न्याय'' शब्द का प्रयोग भी व्यापक अर्थ में किया गया है। इसमें ''न्याय के विधिक स्वरूप'' के साथ ''सामाजिक न्याय'' भी समन्वित है। इसके आधार पर एक कल्याणकारी राज्य स्थापित करने का प्रयास किया गया है, जिससे सभी को उन्नयन का समान अवसर प्राप्त हो सके। वास्तव में, सामाजिक–न्याय लोक कल्याणकारी राज्य का एक आवश्यक तत्व माना जाता है, क्योंकि वह समाज के सभी पक्षों में भेदभाव को दूर करता है (अनु. 14)। सामाजिक–न्याय के साथ–साथ समानता को भी स्थान देता है।[6] इसी कारण समाज के पिछड़े वर्गों की व्यवस्था हमारे संविधान में अलग दी गई है। (अनु. 330–342) समान कार्य समान वेतन[7] (अनु. 39 घ), सम्पत्ति के अर्जन, धारण और व्यय की स्वतंत्रता (अनु. 19 च) प्रदान की गई है। राजनैतिक न्याय द्वारा भारतीय शासन व्यवस्था तथा निजी जीवन में स्वतंत्रता एवं समानता को स्थापित करने की व्यवस्था की गई है।

वयस्क मताधिकार, अल्पसंख्यकों तथा समाज के कमजोर वर्गों का उचित आरक्षण एवं सुविधा, इस तथ्य का द्योतक है। किसी एक प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था के प्रति प्रतिबद्धता को जगह अनुपलब्ध है। अम्बेडकर ने कहा था– ''हमारा संविधान केवल एक यंत्र है, जिसका कार्य राज्य के कई अंगों के कार्य–संचालन को व्यवस्थित करना है। यह कोई ऐसा यंत्र नहीं है जिसके द्वारा किसी विशेष दल के विशेष सदस्यों को पदों पर आसीन किया जाये। राज्य के नीति और संगठन कैसा होना चाहिए, यह ऐसे मामले हैं, जिन्हें समय पर परिस्थितियों के अनुसार लोगों को स्वयं तय करना होगा।''

''स्वतंत्रता'' का तात्पर्य बिना रोक– टोक के स्वतंत्र रूप से विचरण नहीं बल्कि अपनी पसंद से कोई भी कार्य करने की वह स्वतंत्रता है जो कानून द्वारा प्रदत्त एवं सुरक्षा प्राप्त हो।

''स्वतंत्रता'' की अवधारणा के दो पहलू है, नकारात्मक एवं सकारात्मक।

वर्तमान उदारवादी व्यवस्था स्वतंत्रता के सकारात्मक स्वरूप को ही स्वीकार करती है। इसका अभिप्राय यह है कि व्यक्ति को उन कार्यों को करने के लिए प्रतिबंधित न किया जाय जो कि करने योग्य हैं और जो विधि द्वारा मान्य हैं। इसी धारणा के आधार पर संविधान ने नागरिकों को कुछ खास दायित्व प्रदत्त हैं, जिनकी प्रभावशाली रूप से रक्षा की जाती है। यह समझा गया है कि यह अधिकार व्यक्तित्त्व के विकास तथा राष्ट्रीय जीवन की परिपूर्णता के लिए आवश्यक है।

संविधान ने विचारों को अभिव्यक्त करने (अनु. 19 क) किसी भी धर्म को मानने[8] तथा विश्वास करने एवं पूजा करने की स्वतंत्रता (अनु. 25) नागरिक को प्रदान की गयी है। संविधान द्वारा स्वतंत्र न्यायपालिका को स्थापना की गई है, और ये सभी लोगों के अधिकारों के संवर्धन हेतु काम करती है।

''समानता'' शब्द के प्रयोग का उद्‌भव फ्रांस का संविधान है, समानता के अभाव में स्वतंत्रता का कोई महत्व नहीं। उदारवाद के अंतर्गत समानता का तात्पर्य है कि प्रत्येक लोगों को धर्म, जाति, लिंग, रंग, रूप एवं निवास स्थान आदि के आधार पर समान माना जाये। समानता की अवधारणा का यह भी आग्रह है कि उपाधियों का अंत कर दिया जाये एवं सभी को समान अवसर मिले। इसकी व्यवस्था विभिन्न अनुच्छेदों में की गई है जैसे– जन्म, लिंग, धर्म, रंग–रूप, निवास स्थान की समानता (अनु. 15), सार्वजनिक स्थलों का सभी नागरिकों के लिए खोला जाना (अनु. 15 (12), अस्पृश्यता निवारण (अनु. 17), उपाधियों का अंत (अनु. 18) आदि।[9]

''बंधुत्व'' हमारे संविधान की अंतिम आदर्श है। ''बंधुत्त्व'' व्यक्ति की गरिमा और मर्यादा के साथ–साथ राष्ट्रीय एकता को भी व्यक्त करता है। किसी भी राष्ट्र का गौरव तभी स्थापित रह सकता है, जब वहाँ का मानव मर्यादित तथा एकता के सत्र में प्रतिबद्ध होकर कार्य करता हो। उनके अनुसार सभी मनुष्य जन्म से स्वतंत्र है तथा मर्यादा व अधिकारों की दृष्टि से बराबर हैं। उनके पास विवेक व अन्तःकरण है और उन्हें बंधुता के विचार से एक–दूसरे से आचरण जरूरी हैं यह विधि निर्माताओं के मन में बंधुत्त्व की भावना की प्रधानता इसलिए थी कि संविधान लागू होने से पहले ही देश विभाजित हो चुका था और इस विभाजन से सम्बन्धित अनेक लज्जास्पद घटनाएं घटित हो चुकी थी। डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने इसीलिए कहा था कि संविधान के निर्माण में केवल लोकतंत्रीय भावना का ही नहीं वरन् इस तथ्य का समावेश भी अपरिहार्य है कि व्यक्ति का व्यक्तित्त्व एक पवित्र चीज है तथा राष्ट्र की एकता इसी पर आधारित है। इसी कारण संविधान द्वारा प्रांतवाद, भाषावाद तथा सम्प्रदायवाद को हतोत्साहित किया गया तथा जन लौकिकवाद के आधार पर राष्ट्रीय एकता को एकात्म करने की कोशिश की गयी है।[10]

इस प्रकार संविधान ''सम्पूर्ण सम्पन्न प्रजातंत्रात्मक गणराज्य'' की अवधारणा सामाजिक न्याय, स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्त्व की भावना पर आधारित है। स्पष्ट है कि यह सभी मूल्य उदारवाद के आधार स्तम्भ हैं तथा यह भी सत्य है कि उदारवादी मूल्यों के साथ–साथ इनमें समाजवादी अवधारणा के तत्त्वों का भी संकेत है। उदाहरणार्थ सामाजिक न्याय एवं समानता का सम्बन्ध समाजवाद से उसी प्रकार है, जैसे व्यक्तिगत स्वतंत्रता का सम्बन्ध उदारवाद से। किन्तु आधुनिक उदारवादी चिंतनधारा में नकारात्मक नहीं, सकारात्मक स्वतंत्रता का समावेश है।

यह सामाजिक व्यक्ति की समान स्वतंत्रता पर बल देती है, इसीलिए उदारवाद का सीधा सम्बन्ध समानता और सामाजिक न्याय से भी हो जाता है। अतः नवनिर्मित प्रस्तावना का मूल स्वर उदारवादी है, यद्यपि इसमें समाजवादी स्वर भी पृष्ठभूमि में कहीं–कहीं छिपा पड़ा है।[11]

लास्की का मानना है कि ''प्रत्येक युग के मौलिक विचार है।'' इस दृष्टि से मूल अधिकार भी भारतीय जीवन दृष्टि के प्रतिबिम्ब हैं। मौलिक अधिकार व्यक्ति, नागरिक को प्रदत्त हैं। और इसकी संकल्पना अनुच्छेद 12 में दी गई है।[12]

अनुच्छेद 13 द्वारा यदि संसद अथवा विधान मण्डल से बनाया गया विधि अधिकारों के सम्बन्ध में किसी तरह का उल्लंघन करती है तो वह अवैध घोषित की जा सकती है।[13] इस प्रकार कोर्ट को ''न्यायिक समीक्षा का अधिकार'' प्रदान किया गया है।

अनुच्छेद 14 में समानता के दो तत्त्वों पर बल दिया गया है– प्रथम, सभी व्यक्तियों को विधि के समक्ष समानता तथा द्वितीय, विधि का समान संरक्षण। दोनों ही अवधारणाओं का मुख्य उद्देश्य समान न्याय प्रदान करना है। विधि के समक्ष समानता का सिद्धांत एक नकारात्मक अवधारणा है। डायसी के अनुसार इसका अर्थ है कि किसी भी व्यक्ति को विशेष सुविधा प्राप्त न हो तथा सामान्य कानून के समक्ष सभी एक समान हों परंतु विधि के समक्ष समानता के सिद्धांत के साथ उसके कुछ अपवाद भी जुड़े हैं, जैसे–राजदूतों व राजनयिकों को विशेष उन्मुक्तियाँ दी गई हैं, श्रमिक संघों को विधि का संरक्षण प्रदान किया गया है, इत्यादि। ऐसा उनके विशेष पद, जिम्मेदारी एवं स्थिति के कारण किया गया है, जिससे वे अपने कर्त्तव्यों का पालन भली–भाँति कर सकें।

विधियों का समान संरक्षा का सिद्धान्त एक सकारात्मक अवधारणा है, जिसका अर्थ है एक जैसी दशाओं में किसी तरह का भेदभाव वर्जित होगा। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत ''व्यक्ति'' शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया है कि समता का व्यवहार नागरिकों तथा गैरनागरिकों के लिए समान होगा। इस प्रकार इस देश में रहने वाले बाहरी लोगों को भी इस अनुच्छेद से बराबर सुरक्षा मिलती है। जितना अपने देश के लोगों को। किसी भी समाज में न तो प्रत्येक व्यक्ति समान होते है न उनकी योग्यताएं ही समान होती हैं। इसी कारण उनको विधि आधार पर समानता दी जाती है, परन्तु विधायिका द्वारा किया गया निर्धारण मानदंड के परीक्षण का आधार निम्न तरीके से बनाया गया है–

- कोई वर्गीकरण मनमाने ढंग से न किया जाये।
- विभेद ऐसा किया जाये जो वस्तुओं एवं बाहर रहने वाले व्यक्तियों तथा वस्तुओं के बीच हुए विभेदों को सरलतापूर्वक समझा जा सके।
- यह युक्तियुक्त इस आधार की ओर संकेत करती है कि विधि से बनाए गए उद्देश्यों से सम्बन्ध रख सके। उदाहरण के लिए जैसे भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 11 में उल्लिखित है कि ''अवयस्क व्यक्ति संविदा करने में अयोग्य होगा, अर्थात् यहाँ अवयस्क एवं वयस्क व्यक्तियों में जो अन्तर का आधार है वह है ''आयु'', न कि शारीरिक बलिष्ठता या वृद्धपन।''

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 14 लोगों को विधि के समक्ष समता[14] एवं संरक्षण प्रदान करता है। विभेद का प्रतिषेध (अनु. 15) के अंतर्गत समता के स्वामित्व के विधि के आधार पर रखा गया है तथा इस अनुच्छेद के आधार पर अवैध माना जा सकता है। इसे मात्र अपने देश के नागरिकों के लिए ही व्यवस्थित किया गया है। भारत विभिन्न जाति, धर्म, भाषा–भाषियों आदि का देश है। उनको एकता के सूत्र में बाँधने का काम कानूनविदों ने अनुच्छेद 15 (1) के आधार पर किया गया, जिसमें वह व्यवस्था प्राप्त की गई है कि– धर्म अथवा अन्य आधार पर नागरिकों के विरुद्ध राज्य द्वारा कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता है।

अनुच्छेद 15 (2) के अंतर्गत केवल धर्म, जाति, वर्ग, लिंग एवं जन्म स्थान के आधार पर दुकानों, होटलों, सार्वजनिक मनोरंजन स्थानों, कुओं, तालाबों, घाटों, सड़कों एवं सार्वजनिक स्थलों जो या तो जनता के उपयोग हेतु समर्पित कर दिये गये हैं अथवा राज्यनिधि द्वारा पूर्ण अथवा आंशिक तरीके से देखरेख की जाती है, उनके उपयोग के सम्बन्ध में नागरिकों पर कोई प्रतिबंध, अयोग्यता अथवा उत्तरदायित्त्व नहीं लगाया जा सकेगा।

अनुच्छेद 15 (1) का क्षेत्र अधिक बड़ा है। यह न सिर्फ राज्य अपितु दूसरे लोगों के खिलाफ भी सुरक्षित किया गया है।

अनुच्छेद 15 (3) द्वारा राज्य को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वह स्त्रियों तथा बालकों की विशेष व्यवस्था के लिए प्रावधान स्थापित कर सकते हैं। नारी स्थिति के सुधार हेतु कानूनविदों ने राज्य के विरुद्ध संरक्षण दिया है। अनुच्छेद 42 महिलाओं के सुरक्षित प्रसव से जुड़ा है। अनुच्छेद 45 में 6 से 14 साल के बच्चों हेतु निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था है।

राज्य के आधीन किसी पद पर समता अनुच्छेद 16 (1) में राज्य की नौकरियों के विषय में अवसर की समानता द्वारा यह उपबंधित किया गया है कि राज्याधीन नौकरी की नियुक्ति में सभी व्यक्तियों बराबर मौके दिये जाएंगे।

इसकी व्यवस्था अनुच्छेद 14 में वर्णित समता के सिद्धान्त को प्रभावशाली बनाने के लिए की गई है। केवल सरकारी नौकरियों के संबंध में ही समान अवसर की बाध्यता को अपनाया जा सकता है। यदि कोई सेवा, संविदा सम्बन्धी हो तो उसके लिए इस बाध्यता को नहीं माना जा सकता और न ही इसके लिए न्यायालय में जाया जा सकता है।[15]

अनुच्छेद 16 (2) में राज्य, लोगों में किसी विशेष आधार पर अंतर नहीं कर सकता है। यह विभेद नियुक्ति सम्बन्धी क्षेत्र के लिए वर्जित माना गया है। इस अनुच्छेद में दो नये शब्दों ''वंशक्रम'' तथा ''निवास स्थान'' को जोड़कर और भी विस्तृत करने की कोशिश की गयी है।

अनुच्छेद 16 (3) में यह व्यवस्था कर दी गई है कि संसद चाहे तो विधि द्वारा किसी राज्य के या स्थानीय पद को वहीं के लोगों हेतु रिजर्व रख रखने की व्यवस्था है। यह व्यवस्था केवल ''निवास स्थान'' से ही सम्बन्धित है न कि ''अन्य स्थान'' से। राज्यों की नियुक्तियों सम्बन्धी यह व्यवस्था कार्यकुशलता की सुरक्षा के लिए की गई है।

अनुच्छेद 16 (4) में राज्य को सुविधा प्रदत्त है कि ओ बी सी वर्ग के लिए राज्याधीन सेवाओं में आरक्षण करेगा। इस अनुच्छेद का पालन करते समय राज्य को दो मुख्य बातों पर ध्यान रखने की जरूरत होगी –

- सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से कोई वर्ग पिछड़ा हुआ होना चाहिए।
- ऐसे वर्ग के लिए लोगों को सरकारी नौकरियों में उचित भागीदारी न प्राप्त हो। ''पिछड़ा वर्ग'' शब्द को कानून में विस्तृत नहीं किया गया है, अतएव राज्य इस संबंध में अपने स्वविवेक का प्रयोग कर सकता है।

अनुच्छेद 16 (5) के अंतर्गत धार्मिक अथवा साम्प्रदायिक संस्थाओं में कार्यरत् पदाधिकारी एवं सदस्यगण उस विशिष्ट धर्म के अनुयायी तथा विशिष्ट समुदाय को मानने वाले होंगे। इस प्रकार राज्य को विशिष्ट धर्म के लोगों कों चयन का दायित्व दिया गया है।

अनुच्छेद 17 एवं 18 द्वारा अस्पृश्यता तथा उपाधियों का अन्त कर दिया
गया है। अनुच्छेद 17 के अन्तर्गत भारतीयों को स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान किया है। इसके अन्तर्गत दो परस्पर विरोधी तत्त्वों का समावेश है, एक ओर अनुच्छेद 19 (1) में नागरिकों को सात प्रकार की स्वतंत्रताएँ प्रदान की गई हैं और दूसरी तरफ अनुच्छेद 19 (2) से 19 (6) तक इन्हें प्रतिबंधित भी किया गया है। वास्तव में यह संविधान सभा के सदस्यों पर पड़े हुए तत्कालीन प्रभाव की अभिव्यक्ति है। इसके द्वारा एक तरफ तो अत्यधिक संघर्ष के पश्चात् मिली हुई स्वतंत्रता को नागरिक अधिकारों में प्रधानता दी गई परंतु दूसरी तरफ ''सामान्यहित'' को ''व्यक्तिगत हित'' के ऊपर रखकर इसे प्रतिबंधित भी कर दिया गया।[16]

''प्राण''[17] शब्द का अर्थ केवल भौतिक जीवन से ही नहीं अपितु उन समस्त मानवीय क्रियाओं से है, जिसकी वजह से आत्मा बाह्य संसार से अपना सम्बन्ध बनाए रख सकती है। इस प्रकार जीवन की स्वतंत्रता से यह तात्पर्य नहीं कि केवल व्यक्ति जीवित रहे बल्कि उसके अंतर्गत उसे पूरे शारीरिक अंगों को भी यथावत् बनाए रखने की जिम्मेदारी है।

अनुच्छेद 19 (1) (क) सभी लोगों को अपने विचारों को अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता देता है। इसमें सम्पूर्ण अधिकार जनता को ही हैं। वाक् और व्यक्ति की स्वतंत्रता की प्रधानता को बताते हुए श्री पंतजलि शास्त्री ने कहा था: ''विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अभाव में नागरिकों को राजनीतिक विचार–विमर्श तथा राजनीतिक विषय से सम्बन्धित उपयोगी शिक्षा का आदान–प्रदान नहीं किया जा सकता है। अतएव यह अधिकार जनतांत्रिक शासन का आधार–शिला है।'' इसके अंतर्गत ही प्रेस की स्वतंत्रता व समाचार–पत्रों की स्वतंत्रता सम्मिलित है, यद्यपि इसका विशिष्ट नामांकन इस अनुच्छेद में नहीं किया गया है। डॉ0 बी०आर० अम्बेडकर ने संविधान सभा में इसी बात का उल्लेख करते हुए कहा था: ''प्रेस की स्वतंत्रता का पृथक रूप में उल्लिखित किया जाना आवश्यक नहीं है। परंतु यदि समाचार–पत्रों में किसी विषय के बारे में विचार प्रकट करने से इन्कार किया जाता है तो बोलने की आजादी का अतिलंघन माना जाता है। नागरिक विदेशों में भी अपने विचार अभिव्यक्त कर सकता है। नागरिकों के इन अधिकारों पर अनुच्छेद 19 (2) द्वारा निम्नलिखित आधार पर प्रतिबंध लगाए गये हैं–

- राज्य की सुरक्षा
- शिष्टाचार एवं सदाचार के हित में।
- न्यायालय की अवमानना और
- मानहानि।

अनुच्छेद 19 (1) (ख) के अन्तर्गत लोगों को शान्त तरीके एवं निःशस्त्र रूप से सभा एवं सम्मेलन करने एवं जुलूस निकालने की स्वतंत्रता प्रदान की गई है, परन्तु इस स्वतंत्रता का उचित उपयोग किया जा सके, इसी दृष्टि से भारत की सम्प्रभुता व एकता तथा लोक व्यवस्था के आधार पर निर्बन्धन अनुच्छेद 19 (3) लगा दिये गये हैं। निर्बन्धन द्वारा व्यक्तिगत हित, राष्ट्रहित एवं लोकहित को बढ़ावा मिलता है। ये निर्बन्धन इस प्रकार हैं :–

- सभा, सम्मेलन व जुलूस शान्तिपूर्ण ढंग से किए जाने चाहिए। अशांत भीड़ या हिंसात्मक जुलसू इसके अतंर्गत अवैध है,
- सभा एवं सम्मेलन या जुलूस की व्यवस्था बिना अस्त्र–शस्त्र के की गई है परन्तु कुछ लोगों के लिए अस्त्र–शस्त्र धारण करने की स्वतंत्रता भी दी गई है, जैसे सिख समुदाय जिनके धर्म में अस्त्र धारण करना अनिवार्य समझा जाता है,
- इस प्रकार की स्वतंत्रता को व्यक्तिगत हित, राष्ट्रीय एवं लोकहित के आधार पर भी वर्जित संभव है। नागरिकों द्वारा किये गये सभा एवं सम्मेलन उचित है या अनुचित, इसका निर्णय करने का दायित्व राज्य को प्रदत्त है एवं लगाए गये प्रतिबन्ध उचित है या अनुचित इसकी जाँच करने की पूर्ण जिम्मेदारी न्यायालय को प्रदान की गई है।

अनुच्छेद 19 (1) (ग) के अधीन नागरिकों को संस्थाएँ एवं संघ बनाने का अधिकार प्रदान किया गया है। वास्तव में यह अधिकार केवल लोकतंत्र के लिए ही आवश्यक नहीं है वरन् यह संवैधानिक रूप से दिये गए लोगों के अधिकार को बचाने के लिए भी अत्यन्त आवश्यक है।

अनुच्छेद 19 (1) (घ) के द्वारा भारत के समस्त नागरिकों को भारत में कहीं भी बेरोकटोक घूमने की आजादी दी गयी है। इस स्वतंत्रता को प्रदान करने का मुख्य कारण राष्ट्रीय एकता को बनाए रखना तथा प्रान्तवादिता की भावना पर रुकावट डालना रहा है। भारत एक विभिन्नता वाला देश है तथा यहाँ अनेक प्रकार की जाति, धर्म एवं भाषा पायी जाती है, उनके मध्य आपसी सम्पर्क बनाए रखने के लिए तथा क्षेत्रीयतावाद को दूर करने के लिए यह व्यवस्था उचित है। इस अधिकार को भी सामान्य हित तथा एस.टी के हितार्थ निषेध माना गया है।

अनुच्छेद 19 (1) (ङ) यह देश के लोगों को भारत में निवास करने तथा बसने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। यह व्यवस्था भी प्रान्तवाद की भ्रामक अवधारणा को समाप्त करने के उद्देश्य से की गई है। इस अधिकार को भी अनुच्छेद 19 (5) द्वारा प्रतिबन्धित किया गया है। वेश्याओं की नैतिकता आदि के आधार पर राज्य उन्हें उनके निवास स्थान से हटाकर एक विशेष क्षेत्र में बसाने की व्यवस्था कर सकता है। इसी प्रकार कन्टोनमेंट क्षेत्र में शान्ति भंग में शामिल लोगों को बाहर किया जाना संभव है। जनजाति क्षेत्र में भी उनके हित के लिए न्य नागरिकों के निवास को रोका जा सकता है।

अनुच्छेद 19 (1) (च) के द्वारा सम्पत्ति का अर्जन, धारण तथा उसके व्यय करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की गई है। इसके पीछे व्यक्तिवाद तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति से सम्बन्धित आदर्श विद्यमान है। किसी भी व्यक्ति को किसी भी प्रकार के सम्पदा पाने का अधिकार है चाहे वह पैतृक हो, व्यक्तिगत अर्जन या कानून द्वारा प्रदत्त सम्पन्न हो। इसे अनुच्छेद 19 (5) के बुनियाद पर राज्य द्वारा रोकना संभावित है किन्तु इसे बाद में हटा दिया गया है।

अनुच्छेद 19 (1) (छ) में सभी लोगों को रोजगार और व्यापार के सम्बन्ध में स्वतंत्रता प्रदान की गई है। राज्य किसी को उसकी इच्छा के विरुद्ध व्यापार करने के लिए बाध्य नहीं कर सकता। अन्य प्रकार की स्वतंत्रताओं की भाँति इस स्वतंत्रता को भी अनुच्छेद 16 (6) के शर्तों से जोड़ा गया है, जैसे–

- राज्य किसी व्यवसाय, वृत्ति, उपजीविका, व्यापार आदि के लिए तकनीकी अर्हताओं को निश्चित कर सकता है,
- राज्य एवं राज्य के नियंत्रण में किसी निगत द्वारा कारोबार, उद्योग एवं सेवा के संचालन की निश्चितता संभव है अर्थात् राज्य किसी भी व्यापार एवं वाणिज्य को असंवैधानिक घोषित कर उसे नागरिकों से छीन कर पूर्ण एवं आंशिक रूप से अपने अधीन कर सकता है।

वास्तव में अनुच्छेद 19 की धारा 2–6 द्वारा अधिकार पर रोक हैं। ये प्रतिबन्ध भारत की सुरक्षा, देश की अखण्डता एवं प्रभुसत्ता के साथ–साथ देश के लिए आवश्यकता पूर्ति तथा सेवाएँ बनाए रखने एवं नैतिकता के हित में है। इस प्रकार ये प्रतिबंध व्यक्तिगत हित एवं सामूहिक हित में सामंजस्य उत्पन्न करते हैं। अनु**च्छेद 20** के अंतर्गत किसी भी व्यक्ति (नागरिकों एवं विदेशियों) को तीन विधि की सहायता हैं–

(1) कार्योत्तर दण्ड विधि से संरक्षण,
(2) दोहरे दण्ड से संरक्षण तथा
(3) आत्म अभिशंसन से संरक्षण।

कार्योत्तर दण्ड विधि के अंतर्गत यदि किसी व्यक्ति द्वारा अपराध किया गया है तो वह तभी दण्डित किया जायेगा, जब यह ज्ञात हो जाये कि उसने किसी वर्तमान विधि का उल्लंघन किया है। दोहरे दण्ड से संरक्षण के अंतर्गत यदि किसी एक अपराध के लिए किसी एक अपराधी को एक न्यायालय में दण्डित किया जा चुका है तो पुनः उसी अपराध के लिए उसी अपराधी को किसी अन्य न्यायालय द्वारा दण्डित नहीं किया जा सकता। आत्म अभिशंसन से संरक्षण के अंतर्गत जब तक किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई अपराध सिद्ध नहीं हो जाता, तब तक वह निर्दोष सिद्ध किया जाना चाहिए। इस प्रकार की व्यवस्था में संरक्षण लागू करने के लिए तीन बातें विशेष महत्त्वपूर्ण हैं–(क) यह संरक्षण उसी व्यक्ति को प्राप्त होगा जिसके विरुद्ध अभियोग लगाया गया हो, (ख) यह संरक्षण अपने विरुद्ध साक्षी होने की बाध्यता को स्वीकार नहीं करता अर्थात् किसी भी अपराधी व्यक्ति को उसके स्वयं के विरुद्ध गवाही देने की बाध्यता प्रतिबंधित है, और (ग) इसके अंतर्गत दबावपूर्ण साक्ष्य अमान्य या निषिद्ध है। इस प्रकार अनुच्छेद 20 के द्वारा ''अपराधी'' व्यक्ति को भी संरक्षण देकर संविधान अपना उदारवादी स्वरूप
व्यक्त करता है।[18]

अनुच्छेद 21 में व्यक्ति के जीवन की स्वाधीनता प्रदान की गई है। यह सभी अधिकारों में सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि बिना जीवन के कोई भी व्यक्ति अधिकारों का उपभोग नहीं कर सकता। इस अनुच्छेद के अंतर्गत ''व्यक्ति'' शब्द का प्रयोग कर इसे और भी वृहद बनाया गया है अर्थात् नागरिकों के साथ–साथ विदेशी व्यक्तियों को भी जो यहाँ निवास करते हैं, को यह संरक्षण देता है। यह संरक्षण राज्य की कार्यपालिका के खिलाफ प्रदत्त है , विधान मंडल के खिलाफ नहीं, अर्थात् विधान मंडल चाहे तो विधि का निर्माण कर व्यक्ति को उसके इस अधिकार से वंचित कर सकता है।

अपने देश में स्वतंत्रता को विशेष स्थान प्रदान किया गया है। किसी व्यक्ति को बन्दी बनाकर उसको इससे रोकना संभव है। इसलिए अनुच्छेद 21 एवं 22 ऐसे लोगों को संरक्षण प्रदान करता है। सामान्य नियमों के उल्लंघन करने के कारण बनाए गए बन्दी को यथाशीघ्र उसके बन्दीकरण का कारण बताना, उसे अपनी प्रतिरक्षा हेतु किसी अधिवक्ता से परामर्श की अनुमति, 24 घंटे के अन्दर उसे किसी मजिस्ट्रेट के सामने प्रस्तुत करना, इत्यादि उपर्युक्त अनुच्छेद में प्रदत्त मुख्य संरक्षण है। परन्तु इसके अन्तर्गत दुश्मन देशों के बन्दियों को उपर्युक्त संरक्षण नहीं मिलता है। निवारण निरोध के अंतर्गत बनाये गये बन्दियों को भी संविधान का लाभ मिलता है।

अनुच्छेद 22 के अनुसार ऐसे बन्दियों को भी यथाशीघ्र उनके बन्दी बनाये जाने के कारण से अवगत करना, तीन माह से अधिक समय तक बिना सलाहकार बोर्ड के समक्ष प्रस्तुति के बन्दी न बनाने की आज्ञा, इत्यादि प्रमुख संरक्षण है।[19]

अनुच्छेद 23 में लोगों को शोषण के खिलाफ अधिकार प्रदायित हैं। अनुच्छेद 23 (1) में मानव के अनैतिक व्यापार, बेगार तथा इसी प्रकार के अन्य बाध्यकारी श्रम को निषिद्ध किया गया है। इस अनुच्छेद का बड़े ही

विवेकपूर्ण रूप से प्रयोग किया गया है तथा मानव के व्यापार तथा वाणिज्य पर निषेधाज्ञा लागू है। लोगों को व्यापार हेतु आजादी है परन्तु उनका यह व्यापार पूँजीवादी शोषण पर आधारित न हो जाये जिसमें श्रमिकों के श्रम तथा पारिश्रमिक दोनों को प्रभावित किया जाता है।

अनुच्छेद 24 के अंतर्गत 14 वर्ष से कम आयु वाले बच्चों को किसी कारखाने या अन्य किसी जोखिम पूर्ण कार्य में संलग्न करने के राज्य के अधिकार निषेध है। इसके निर्माताओं ने इस प्रकार की भावना को अनुच्छेद 45 के अंतर्गत रखकर और भी अधिक संवर्धन की कोशिश की गयी है। इसमें राज्य संविधान के प्रारम्भ होने से 10 वर्ष की अवधि के भीतर 14 वर्ष तक की आयु के समस्त बालक–बालिकाओं को निःशुल्क शिक्षा का प्रबंध करे।

अनुच्छेद 25[20] से 28 तक धार्मिक स्वतंत्रता के प्रावधान की व्यवस्था है। यह व्यवस्था वास्तव में राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता को बनाए रखने के लिए की गई थी। हमारे देश में अनेक धर्म विद्यमान है एवं किसी एक धर्म या सम्प्रदाय को प्रधानता प्रदान करना मुश्किल था। इन्हीं कारणों से भारतीयों ने अमेरिका के संविधान की तरह धर्मनिरपेक्षता को स्वीकारा गया। इसमें दो खास बातों पर बल दिया गया– (1) राज्य धर्म के स्वतंत्र आचरण में बाधा नहीं डालेगा और (2) राज्य किसी भी धर्म को किसी भी प्रकार की सहायता नहीं देगा। अनुच्छेद 27 में लोगों को किसी प्रकार के धर्म सम्बन्धी कर देने के लिए बाध्य नहीं किया जायेगा।

अनुच्छेद 28 में सभी तरह के संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा का निषेध है। सम्पूर्ण समाज को उन्नति करने का मौका मिले। इसलिए अनुच्छेद 29 एवं 30 द्वारा उन्हें अपनी भाषा, संस्कृति एवं लिपि को बनाये रखने की सुरक्षा देता है। वस्तुतः यह व्यवस्था अल्पसंख्यक वर्ग के लिए की गई है जो अपनी भाषा, संस्कृति एवं लिपि को केवल शिक्षण संस्थान द्वारा बनाए रख सकते हैं। अनुच्छेद 29 (2) उच्चतम न्यायालय ने इस पर प्रकाश डालते हुए कहा कि यह लाभ केवल अल्पसंख्यक वर्ग के लिए ही नहीं वरन् बहुसंख्यक वर्ग हेतु भी है।

अनुच्छेद 30 (1) धर्म और जाति पर आधारित वर्गों को स्व–इच्छानुरूप शिक्षण–संस्थाओं की स्थापना व प्रशासन का अधिकार प्रदान करता है। इस प्रकार के अल्पसंख्यक वर्ग से तात्पर्य धर्म तथा भाषा के आधार पर पाये जाने वाले अल्पसंख्यकों से है। अनुच्छेद 30 (2) में राज्य को निर्देश है कि उपर्युक्त संस्थाओं को अनुदान देते समय कोई भेदभाव नहीं करेगा।

अनुच्छेद 31(1) सभी को बिना विधिक प्राधिकार में सम्पत्ति से वंचित करने के विपरीत संरक्षण प्रदान करता था। अनुच्छेद 31 (2) के अन्तर्गत कोई सम्पत्ति सार्वजनिक प्रयोजन के लिए तब तक अर्जित नहीं की जायेगी, जब तक कि वह विधि द्वारा अर्जित सम्पत्ति के लिए मुआवजे का उपबन्ध नहीं करती। सम्पत्ति का अधिग्रहण सामूहिक हित के आधार पर किया जाता है तथा अधिग्रहीत वस्तु या सम्पत्ति उतनी ही मात्रा में ली जाएगी, जितनी कि आवश्यक है। अमेरिका में यह अधिग्रहण पूर्ण रूप से राजनैतिक आवश्यकता पर निर्भर है। व्यक्तिगत सम्पत्ति को दूसरे व्यक्तिगत हित के लिए प्रदान करने को अमेरिका तथा भारत दोनों ही स्थानों में असंवैधानिक माना गया है। धार्मिक संस्था से सम्बन्धित सम्पत्ति को छोड़कर सभी प्रकार की सम्पत्ति, चाहे वह धन सम्बन्धी हो या भू सम्बन्धी, अधिग्रहीत की जा सकती है। इसमें ''मुआवजा'' शब्द भी प्रयुक्त है। ''बराबर मुआवजा'' अर्थात् सम्पत्ति के मालिक को उसकी सम्पत्ति का उतना ही मुआवजा दिया जाये जो कि सम्पत्ति को त्यागते समय बाजार मूल्य था। ऐसी व्यवस्था करने का मुख्य उद्देश्य यह था कि सम्पत्ति का मालिक अपने को उसी

प्रकार व्यवस्थित रख सके जैसे कि वह सम्पत्ति को अपने पास रखते समय था अर्थात् मुआवजे का अर्थ दी गई सम्पत्ति की हानि से मुक्ति प्राप्त करना है। यद्यपि अनुच्छेद 31 (2) द्वारा व्यक्तिगत सम्पत्ति को सुरक्षा प्रदान की गई, परन्तु ''मुआवजे'' शब्द को लेकर सदैव ही संघर्ष चलता रहा और अंत में यह विलोपित कर दिया गया।

अनुच्छेद 32 में लोगों के अधिकारों को सुरक्षा प्रदान किया गया। डॉ० अम्बेडकर के अनुसारः ''अनुच्छेद 32 संविधान का हृदय एवं आत्मा है।'' वैसे देखा जाए तो देश के कानून के भाग 3 में कुछ निषेध के साथ मौलिक अधिकार सबको बराबर दिये गए हैं लेकिन इसके अनुच्छेद 330 से 342 तक कतिपय वर्गों से सम्बन्धित विशेष उपबन्धों का उल्लेख है। इन उपबन्धों का उद्देश्य सभी अल्पसंख्यक वर्गों को प्रशासन में प्रतिनिधित्त्व प्रदान करना था। इस प्रकार यह अनुच्छेद उदारवाद की मूल भावना से सम्बन्धित है।

संविधान सभा को अल्पसंख्यकों के संरक्षण के विषय में हो रहे वार्तालाप में श्री अयंगर तथा अय्यर की मान्यता थी कि अल्पसंख्यकों के हित तथा भौगोलिक भावना के मद्देनजर उन्हें ''प्रशासन'' में स्थान दिया जाये। इस अनुच्छेद में आसाम की अनुसूचित आदिम जातियों को प्रधानता दी गई।

निष्कर्ष–

भारत में स्वतन्त्रता उपरान्त भारतीय संविधान और कानूनों के माध्यम से मानवाधिकार की व्यवस्था व संरक्षण के उपाय हुए। स्वतन्त्र भारत में गैर–सरकारी संगठनों का मानव अधिकार रक्षा हेतु तीव्रता से अस्तित्त्व आया। 26 जनवरी, 1950 को भारत गणराज्य बना और भारत का संविधान लागू हुआ। भारतीय संविधान की प्रस्तावना शासन व्यवस्था के स्वरूप व ध्येयों को स्पष्ट करती है। प्रस्तावना का 'हम भारत के लोग' शब्द सम्पूर्ण सत्ता का निवास जनता में है, गणतन्त्र 'सामान्य इच्छा' से शासन की बात के अतरिक्त न्याय, स्वतन्त्रता, समानता, बंधुत्त्व की बात की गयी है। संविधान के भाग–3 में अनुच्छेद 12 से 35 तक 'मौलिक अधिकारों की व्यवस्था की गयी है। अनुच्छेद 13 न्याय पालिका को यह यह अधिकार प्रदान करता है कि यदि संसद या राज्य विधान मंडल की बनाई गयी कोई विधि मूल अधिकारों का उल्लंघन करती है तो उसे अवैध घोषित किया जा सकता है। समानता के अधिकार की बात अनुच्छेद 14–18 में है। अनुच्छेद–14 विधि के समक्ष समानता व समान संरक्षण, अनुच्छेद–15 समता के अधिकार के सामान्य नियमों का प्रतिस्थापन किया गया है। इसमें यह बताया गया है कि केवल धर्म, जाति, वर्ण, लिंग अथवा जन्म स्थान के आधार पर भेदभव नहीं किया जायगा। अनुच्छेद 16, 17,18 में समानता की व्यवस्था है। अनुच्छेद 19 से 22 तक स्वतन्त्रता का अधिकार है। इसमें अभिव्यक्ति, शांतिपूर्ण सभा करने, संघ बनाने, आवागमन करने, बसने, सम्पत्ति, व्यापार और जीविका, अनुच्छेद–20 में अपराधों के लिए दोष सिद्धि के संबंध में संरक्षण की व्यवस्था है। अनुच्छेद–21 प्राण व दैहिक स्वतन्त्रता का संरक्षण, अनुच्छेद–21 (क) में निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा, अनुच्छेद–22 कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और विरोध में संरक्षण की व्यवस्था है। अनुच्छेद 23 व 24 में शोषण के विरुद्ध अधिकार है। धार्मिक स्वतन्त्रता से संबंधित उपबंध अनुच्छेद 25–28 तक है। अनुच्छेद 29–30 में संस्कृति और शिक्षा से संबंधित अधिकार है। संवैधानिक उपचारों की व्यवस्था अनुच्छेद–32 में है। इसके तहत पाँच तरह की रिट जारी करने का अधिकार न्यायालय को है–बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध लेख, उत्प्रेषण, अधिकार पृच्छा लेख।

मानवाधिकार वे मूल अधिकार हैं जो मनुष्य के रूप में उसके विकास का अनिवार्य हिस्सा हैं। संविधान मौलिक अधिकारों और डीपीएसपी के रूप में उन मूल अधिकारों के रक्षक के रूप में कार्य करता है। मौलिक अधिकारों पर अधिक बल दिया गया है और वे कानून की अदालत में सीधे लागू हैं। भारतीय संविधान के भाग–तृतीय और भाग–चतुर्थ के एक गहन अध्ययन से, यह आसानी से स्पष्ट है कि मानव अधिकारों पर सार्वभौमिक घोषणा में प्रदान किए गए लगभग सभी अधिकार इन दो भागों में शामिल हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. विसवाल, तपन, मानवाधिकार जेन्डर एवं पर्यावरण, विवा बुक्स प्रा०लि०, नई दिल्ली, 2014, पृ० 178
2. श्रीवास्तव, सुधारानी, भारत में मानवाधिकार की अवधारणा, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, 2003, पृष्ठ 46
3. आस्टिन, ग्रेनविल, दि इण्डियन कान्स्टिट्यूशन : कार्नरस्टोन ऑफ द नेशन, 1966, पृ० 50–52
4. योजना, सूचना प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, अप्रैल–2006, पृष्ठ 46
5. जय जयराम उपाध्याय, मानव अधिकार, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद, 2002, पृष्ठ 78
6. विधि समक्ष समानता (यूनियन ऑफ इंडिया विरुद्ध सचिव (1992) सुप्रीम कोर्ट केसेज, पृ० 1
7. धीरेन्द्र, चामोली विरुद्ध उ.प्र. राज्य (1986) सुप्रीम कोर्ट केसेज, पृ० 637
8. प्रस्तावना में ''धर्म–निरपेक्ष'' संविधान के 42वें संविधान संशोधन के द्वारा जोड़ दिया गया है।
9. श्रीवास्तव, सुधारानी, मानव अधिकार, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पृ० 24
10. श्रीवास्तव, सुधारानी, मानव अधिकार, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पृ० 24
11. श्रीवास्तव, सुधारानी, मानव अधिकार, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पृ० 25
12. श्रीवास्तव, सुधारानी, भारत में मानवाधिकार की अवधारणा, पृष्ठ 24
13. मौर्या, गीता, मानव अधिकार, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ 33
14. चन्द्रा, रमेश, मानवाधिकार विविध आयाम व चुनौतियाँ (2010), अंकित पब्लिकेशन्स, दिल्ली, पृ० 32
15. चन्द्रा, रमेश, मानवाधिकार विविध आयाम एवं चुनौतियाँ (2010), गीता मौर्या, पृष्ठ 34
16. श्रीवास्तव, सुधारानी, मानव अधिकार, वही, पृष्ठ 30
17. ''प्राण'' का अर्थ (कन्ज्यूमर एजुकेशन एवं रिसर्च विरुद्ध यूनियन ऑफ इंडिया 1995 ऑल इंडिया रिपोर्टर, सुप्रीम कोर्ट, पृष्ठ 922)
18. ''प्राण'' का अर्थ (कन्ज्यूमर एजुकेशन एवं रिसर्च विरुद्ध यूनियन ऑफ इंडिया 1995 ऑल इंडिया रिपोर्टर, सुप्रीम कोर्ट, पृष्ठ 32)
19. श्रीवास्तव (2005), सुधारानी, मानव अधिकार, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पृष्ठ 33
20. गौवध पर संपूर्ण प्रतिबन्ध से अनुच्छेद 25 प्रभावित नहीं होता (स्टेट ऑफ वेस्ट बंगाल विरुद्ध आशुतोष लाहरी 1995 ऑल इंडिया रिपोर्टर सुप्रीम कोर्ट पृष्ठ 464)